

---

## इकाई 3 वर्तमान समस्याएँ एवं विचारणीय मुद्दे

---

### इकाई की रूपरेखा

- 3.0 उद्देश्य
- 3.1 प्रस्तावना
- 3.2 गरीबी, बेरोज़गारी एवं असमानता की समस्या
  - 3.2.1 गरीबी का माप
  - 3.2.2 गरीबी का आकार
  - 3.2.3 गरीबी के कारण
  - 3.2.4 सरकारी नीति
- 3.3 जनसंख्या की समस्या
- 3.4 आधारिक ढाँचे की अपर्याप्त उपलब्धि
- 3.5 बढ़ती कीमतों की समस्या
- 3.6 सरकार की भूमिका एवं सार्वजनिक उपक्रम
- 3.7 काली अर्थव्यवस्था एवं भ्रष्टाचार
- 3.8 निम्न उत्पादकता की समस्या
- 3.9 भुगतान-शेष की समस्या
- 3.10 राजकोषीय बाधाएं
- 3.11 विकास में क्षेत्रीय विषमताएँ
- 3.12 पर्यावरण हास की समस्या
- 3.13 सारांश
- 3.14 शब्दावली
- 3.15 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 3.16 बोध प्रश्नों के उत्तर

---

### 3.0 उद्देश्य

---

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- भारतीय अर्थव्यवस्था की विद्यमान संरचना का वर्णन कर सकें,
- अंतरराष्ट्रीय परिवेश में भारतीय अर्थव्यवस्था में उपलब्ध स्थिति की समीक्षा कर सकें,
- अर्थव्यवस्था के समक्ष विभिन्न समस्याओं का विश्लेषण कर सकें,
- आर्थिक नीति-निर्धारकों द्वारा जिन कठिनाइयों का सामना करना होता है, उनकी चर्चा कर सकें; तथा
- अर्थव्यवस्था के विभिन्न पहलुओं में पाए जाने वाले परस्पर संबंधों का वर्णन कर सकें।

---

### 3.1 प्रस्तावना

---

अपने अध्ययन में हम अब तक इकाई-1 और इकाई-2 में यह जानकारी प्राप्त कर सके हैं कि

क) स्वतंत्रता के साथ देश में विकराल रूप से फैली गरीबी हमें धरोहर के रूप में मिली; तथा

ख) गरीबी से निपटने के लिए हमने विकास कार्यक्रम आरंभ किए। इस क्रम में 1 अप्रैल, 1951 को पहली पंचवर्षीय योजना आरंभ की गई। योजनावधि में भारत के आर्थिक ढाँचे में अनेक तरह के मौलिक परिवर्तन दिखलाई दे रहे हैं। किंतु, साथ ही, भारतीय अर्थव्यवस्था के समक्ष अनेक समस्याएँ भी आ खड़ी हुई हैं जिनके गहन अध्ययन करने की आवश्यकता है। इनमें से कुछ समस्याएँ और मुद्दे तो हमें निपटने के लिए ही हमने योजनाबद्ध विकास के कार्यक्रम को अपनाया। इन समस्याओं में प्रमुख है—विस्तृत रूप से फैली गरीबी की समस्या, जिसके साथ जुड़ी हैं बरोज़गारी एवं आय में विपमता की समस्या। कुछ अन्य समस्याओं का हमें विकास-क्रम के दौरान आभास हुआ है अर्थात् ये विकास-क्रम में उदित हुईं जैसे बढ़ती कीमतों की समस्या, सार्वजनिक उपक्रमों की निम्न दर्जे की निष्पादनता, पर्यावरण-हास, आधारिक ढाँचे की अपर्याप्त उपलब्धि, क्षेत्रीय विपमताएँ, वित्तीय संसाधनों की अपर्याप्तता आदि। वैसे तो हम इन सभी मुद्दों की विस्तृत जानकारी इस पाठ्यक्रम के दौरान अलग-अलग इकाइयों में देते रहेंगे, किंतु यहाँ पर हम एक जगह इन सभी मुद्दों की संक्षिप्त जानकारी प्रस्तुत करेंगे। इस प्रकार के अध्ययन से विद्यार्थीगण भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषताओं से अवगत हो सकेंगे।

## 3.2 गरीबी, बरोज़गारी एवं असमानता की समस्या

पिछली कुछ शताब्दियों से चिर-स्थायी गरीबी हमें घेर रही है। योजनावधि में किए गए भरसक ठोस प्रयासों के बावजूद भी इस परिस्थिति से पूरी तरह से निपटना हमारे लिए अभी तक संभव नहीं हो सका है।

### 3.2.1 गरीबी का माप

गरीबी के आकार के बारे में जानकारी "गरीबी-रेखा" की अवधारणा की सहायता से ली जा सकती है। गरीबी-रेखा अथवा गरीबी की रेखा आय का वह स्तर है जिससे उपभोक्ता अपने पात्र जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक वस्तुएँ जुटा पाता है। भारत में गरीबी-रेखा का निर्धारण निम्न प्रकार किया जाता है :

- जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक न्यूनतम पोषण की मात्रा निर्धारित कर दी गई है। ग्रामीण क्षेत्र में एक व्यक्ति को प्रतिदिन अपने जीवन निर्वाह के लिए 2400 कैलोरी के बराबर पोषक तत्व मिलने चाहिए जबकि शहरी क्षेत्रों में यह मात्रा 2100 कैलोरी हो सकती है। ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक पोषक तत्वों की आवश्यकता इस कारण से होती है कि ग्रामीण लोगों द्वारा की जाने वाली दैनिक क्रियाओं में अधिक शारीरिक शक्ति का प्रयोग किया जाता है।
- इस न्यूनतम मात्रा में पोषक तत्व प्राप्त करने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में 1973-74 की कीमतों पर प्रति व्यक्ति मात्र 49.1 रुपये की आय की आवश्यकता होती है जबकि शहरी क्षेत्रों में 56.6 रुपये की आवश्यकता होती है। आय की यह मात्रा 1973-74 की कीमतों के आधार पर निर्धारित की गई है। यदि कीमतों में वृद्धि हो जाती है तो आय की मात्रा भी बढ़ानी होती है और गरीबी-रेखा के स्तर में भी परिवर्तन आता है। उदाहरण के तौर पर, 1992-93 की कीमतों पर ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के लिए यह क्रमशः 228.00 रुपये और 264.00 रुपये प्रति माह निर्धारित की गई थी।
- गरीबी-रेखा की परिभाषा परिवार के स्तर पर की गई है। एक परिवार में सामान्यतः 5 सदस्य रहते हैं। इस प्रकार, उस ग्रामीण परिवार को गरीबी रेखा के नीचे माना जाता है जिसकी वार्षिक आय 1992-93 की कीमतों पर 13,680.00 रुपये से कम होती है। इस आय-स्तर का निर्धारण निम्न प्रकार किया गया है :

$$228.00 \text{ रुपये} \times 5 \text{ सदस्य} \times 12 \text{ माह} = 13,680.00 \text{ रुपये}$$

इसी प्रकार, शहरी परिवारों के लिए यह सीमा 15,840.00 रुपये पर निर्धारित की गई है। यह गणना निम्न प्रकार की गई है :

$$224.00 \text{ रुपये} \times 5 \text{ सदस्य} \times 12 \text{ माह} = 15,840.00 \text{ रुपये}$$

### 3.2.2 गरीबी का आकार

उपरोक्त रूप से परिभाषित गरीबी-रेखा को आधार मानकर योजना आयोग समय-समय पर भारत में गरीबी-रेखा के नीचे रहने वाली जनसंख्या का अनुमान लगाता रहा है। इन अनुमानों का संक्षिप्त ब्यौरा तालिका-1 में प्रस्तुत किया गया है :

तालिका-1 : गरीबी-रेखा के नीचे रहने वाली जनसंख्या का अनुपात

क्षेत्र	1972-73	1977-78	1987-88	1993-94
ग्रामीण	54.10	51.20	39.09	37.27
शहरी	41.20	38.20	38.20	32.36
कुल	51.50	48.30	38.86	35.97

प्रतिशत

तालिका-1 से निम्न बातें स्पष्ट होती हैं :

- 1) भारत की एक-तिहाई से अधिक जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे रहती है।
- 2) ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा गरीबी का आकार अधिक विकराल है।
- 3) पिछले दशक में हालाँकि गरीबी के अनुपात में गिरावट आई है, लेकिन, चूँकि भारत की जनसंख्या तेज़ गति से बढ़ती रही है, परिणामस्वरूप गरीबी की रेखा के नीचे रहने वाले व्यक्तियों की संख्या भी बराबर बढ़ती रही है।

### 3.2.3 गरीबी के कारण

भारत में विस्तृत रूप से फैली गरीबी का प्रमुख कारण है- धीमी गति से आर्थिक विकास। साथ ही, रोज़गार के अवसरों में धीमी गति से वृद्धि तथा आय-वितरण में पाई जाने वाली विपमताओं ने भी गरीबी के प्रसार में योगदान दिया है।

- i) **आर्थिक विकास की धीमी दर** : योजनावधि के दौरान आर्थिक विकास की औसत वार्षिक दर लगभग 4 प्रतिशत रही है। चूँकि इस अवधि में जनसंख्या भी लगभग 2 प्रतिशत वार्षिक दर से बढ़ती रही है, परिणामस्वरूप 1951-99 की अवधि में प्रति-व्यक्ति आय में मात्र 2 प्रतिशत की दर से वृद्धि हुई है। विकास की यह दर अनेक दृष्टियों से अपर्याप्त समझी जानी चाहिए :
  - क) यह विकास दर विभिन्न योजनाओं में निर्धारित लक्ष्यों से कम रही है;
  - ख) यह विकास दर द0 कोरिया, ताइवान, मलेशिया, इण्डोनेशिया, थाईलैण्ड, सिंगापुर, हांगकांग, आदि अन्य विकासशील देशों की विकास दर की तुलना में बहुत कम रही है।
  - ग) विकास की यह दर हमारी आवश्यकताओं से बहुत कम रही है।

विकास-दर की अपर्याप्तता इस बात से पूरी तरह सिद्ध हो जाती है कि हालाँकि योजनावधि में भारतीय अर्थव्यवस्था में अनेक मौलिक संरचनात्मक और संस्थागत परिवर्तनों का आविर्भाव हुआ है, किंतु गरीबी का आकार लगभग पूर्ववत् ही बना हुआ है।

- ii) **रोज़गार के अपर्याप्त अवसर** : भारतीय अर्थव्यवस्था में नए रोज़गार के अवसरों के निर्माण करने की सीमित क्षमता ही बनी रही है। श्रम-बहुलता एवं अति-जनसंख्या वाली भारतीय अर्थव्यवस्था में गरीबी पर उसी परिस्थिति में काबू पाया जा सकता है जबकि आर्थिक विकास के साथ-साथ रोज़गार के नए-नए अवसरों का निर्माण हो। रोज़गार के नए अवसरों की निर्माण दर कार्यशील जनसंख्या की वृद्धि दर से अधिक होनी चाहिए। ऐसी अनुकूल परिस्थिति में न केवल विद्यमान श्रम-शक्ति को रोज़गार मिल पाता है, बल्कि बढ़ती हुई श्रम-शक्ति आर्थिक विकास में रोज़गार के माध्यम से सक्रिय योगदान दे पाती है। इस तरह गरीबी स्वतः ही मिट जाती है।

किंतु यदि इसके विपरीत, रोज़गार के नए-नए अवसरों की वृद्धि दर श्रम-शक्ति की वृद्धि-दर से कम होती है तो बढ़ती हुई श्रम-शक्ति का एक हिस्सा बेरोज़गार बना रहता है।

बेरोज़गार का अर्थ है— आय के साधन का अभाव जो गरीबी का पर्यायवाची है।

भारतीय अर्थव्यवस्था में रोज़गार-सृजन की शक्ति बहुत ही सीमित रही है। विशेष रूप से विनिर्माण उद्योगों में तो यह नगण्य रही है। परिणामतः बढ़ती श्रम-शक्ति अपने लिए जीवन-निर्वाह के साधन जुटाने के वास्ते कृषि पर निर्भर बनी रही है। कृषि क्षेत्र में भी उत्पादकता का स्तर निम्न दर्जे का होने का कारण अतिरिक्त श्रमिकों को रोज़गार प्रदान करने की क्षमता सीमित ही बनी रही है। परिणामस्वरूप बेरोज़गारी और गरीबी का प्रसार होता रहा है। (विस्तृत अध्ययन के लिए खंड-8 की इकाई संख्या-20 देखिए)

- iii) **आय वितरण में विषमताएँ** : स्थिति का अध्ययन करते समय हमें भारत में आय-वितरण पर भी ध्यान देना होगा। योजनावधि में अतिरिक्त आय का निःसंदेह निर्माण हुआ है, लेकिन, चूँकि गरीबी मिट नहीं पाई है इसलिए इसका यह अर्थ भी लगाया जा सकता है कि इस दौरान जिस अतिरिक्त आय का निर्माण किया गया वह सारी आय या उसका बड़ा हिस्सा कुछेक व्यक्तियों के हाथों में चला गया और शेष इसके उपयोग से वंचित रह गए। स्पष्ट रूप से सम्पन्न वर्ग इस प्रक्रिया से लाभान्वित हुआ है जबकि विपन्न वर्ग ताकता रहा है। यह बात इस विषय से सम्बद्ध अनेक अध्ययनों से साफ़ झलकती है। हम इनमें से कुछ के परिणाम तालिका-2 में प्रस्तुत कर रहे हैं :

तालिका-2 : भारत में आय का वितरण

स्त्रोत	NCAER(1964-65)	विश्व-बैंक(1994)
ऊपर के 10% वर्ग का हिस्सा	33.5	25.0
नीचे के 20% वर्ग का हिस्सा	7.5	9.2

तालिका-2 से स्पष्ट है कि उच्च आय वर्ग द्वारा राष्ट्रीय आय का बड़ा हिस्सा हथिया लिया गया है। जबकि उच्च आय वर्ग में 10 प्रतिशत लोग देश की कुल आय के लगभग 25 प्रतिशत भाग का उपयोग कर पाते हैं। निम्न आय वर्ग के 20 प्रतिशत लोगों के हाथ मात्र 9 प्रतिशत आय ही आ पाती है।

आय के असमान वितरण के लिए ज़िम्मेदार प्रमुख कारण है सम्पत्ति के स्वामित्व में पाए जाने वाली विषमताएँ। ग्रामीण जीवन तो पूरी तरह से भूमि के स्वामित्व से जुड़ा हुआ है। यदि आपके पास भूमि है तो आप सम्पन्न हैं, यदि आप भूमि-विहीन हैं तो आप विपन्न वर्ग से हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में भूमि के स्वामित्व में तीखी विषमताएँ पाई जाती हैं। जबकि कुल जोतों की संख्या में 10 हेक्टेयर या इससे बड़ी आकार वाली जोतों का अनुपात मात्र 5 प्रतिशत है, किंतु इनके अधीन कुल खेती-योग्य भूमि का 50 प्रतिशत हिस्सा है। इसके विपरीत, 2.5 हेक्टेयर या उससे छोटी जोतों की 55 प्रतिशत से अधिक हैं किंतु उनके अंतर्गत कुल भूमि का केवल 10 प्रतिशत हिस्सा ही है। ये तथ्य ग्रामीण क्षेत्रों में व्याप्त विषमताओं का सही परिचायक है।

इसी तरह, शहरी क्षेत्रों में पूँजी, तकनीक और दक्षता आदि में विभिन्नता के रूप में विषमताएँ दिखलाई देती हैं। वे व्यक्ति अथवा वर्ग-समूह जिनके पास ये संसाधन प्रचूर मात्रा में उपलब्ध हैं, वे धनी और सम्पन्न हैं। इन संसाधनों से विहीन वर्ग गरीब है।

### 3.2.4 सरकारी नीति

गरीबी के स्वरूप और कारणों के अनुरूप भारत में सरकार की नीति को ढाला गया है। इस दृष्टिकोण से हम 1951-99 की समस्त अवधि को दो भागों में बाँट सकते हैं : (क) 1951-75 की अवधि; और (ख) 1975 के बाद की अवधि। आइए, अब इन दोनों भागों पर पृथक-पृथक विचार किया जाए।

- क) 1951-75 की अवधि में गरीबी से निपटने के लिए सरकार प्रमुख रूप से तीव्र आर्थिक विकास पर ही अपने प्रयास केंद्रित रखी। ऐसा विश्वास किया जाता था कि तेज़ गति से आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था में जिस अतिरिक्त आय का सृजन होगा उससे गरीबी की रेखा के नीचे रहने वाले परिवार भी लाभान्वित होंगे और इस प्रकार गरीबी को मिटाना संभव हो जाएगा। तेज़ गति से

आर्थिक विकास में गरीबी को मिटाने की क्षमता के बारे में सरकार का विश्वास एक अन्य मान्यता पर आधारित था। इस मान्यता को हम "नीचे की ओर प्रवाह" (Trickle-down) का नाम देते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि आय किसी भी स्तर पर निर्मित की जाए इसका कुछ भाग अनिवार्य रूप से नीचे के स्तर की ओर प्रवाहित होता है जिसके लाभ निम्न आय वर्ग को प्राप्त होते हैं। आर्थिक विकास के साथ-साथ कुछ राजकोपीय उपाय भी अपनाए गए जिनका उद्देश्य आय एवं उत्पादक निधियों का पुनर्वितरण करना था। साथ ही, रोज़गार के नए अवसरों के निर्माण के भी प्रयास किए गए। किंतु यह स्पष्ट है कि गरीबी से निपटने की इस युक्ति से हमें सीमित सफलताएँ ही प्राप्त हुईं। गरीबी का भार पूर्ववत् बना रहा।

- ख) 1975 के बाद की अवधि में सरकार गरीबों के पक्ष में सीधे हस्तक्षेप की नीति का पालन कर रही है। इसके लिए सरकार ने अनेक गरीबी-उन्मूलन कार्यक्रमों का आयोजन किया है। जैसे, समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (IRDP), जवाहर रोज़गार योजना (JRY), रोज़गार वायदा स्कीम (EAS), प्रधानमंत्री रोज़गार योजना (PMRY) आदि। विभिन्न गरीबी-उन्मूलन कार्यक्रमों के समक्ष लक्ष्य है- रोज़गार के अवसरों का निर्माण करना। इन रोज़गार के अवसरों के लाभ गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले परिवारों को उपलब्ध करवाए जाते हैं। रोज़गार के अवसरों का निर्माण दो तरीकों से किया जा सकता है। (i) सरकार किन्हीं पूँजीगत परियोजनाओं का आयोजन करती है और गरीब परिवार के लोगों को मज़दूरी के बदले रोज़गार प्रदान करती है; और (ii) सरकार अपेक्षित हितार्थियों को वित्तीय सहायता प्रदान करती है जिसके द्वारा ये परिवार अपने लिए कुछ छोटे-मोटे धंधे का प्रबंध कर पाते हैं। इन सभी कार्यों के लिए सरकार द्वारा अपने बजट में से अथवा वित्तीय संस्थाओं से संसाधनों की व्यवस्था की जाती है।

नई आर्थिक नीति एवं न्यूनतम आर्थिक कार्यक्रम में इस बात को दोहराया गया है कि सरकार गरीब वर्ग के पक्ष में सीधे हस्तक्षेप की नीति को जारी रखेगी।

### बोध प्रश्न 1

- 1) हम देश में गरीबी के आकार का अनुमान किस तरह लगा सकते हैं?

.....

.....

.....

.....

- 2) गरीबी-रेखा के नीचे रहने वाले वर्गों की पहचान करें।

.....

.....

.....

.....

- 3) भारत में गरीबी के तीन प्रमुख कारण बतलाएँ।

.....

.....

.....

### 3.3 जनसंख्या की समस्या

गरीबी के साथ ही जुड़ी हुई बढ़ती हुई जनसंख्या की समस्या है। वस्तुतः गरीबी बढ़ती जनसंख्या का परिणाम भी है और कारण भी।

सामान्यतः बड़े आकार की और बढ़ती हुई जनसंख्या को आर्थिक विकास के अनुकूल माना जाना चाहिए। जनसंख्या ही सर्वप्रमुख और सबसे अधिक सक्रिय उत्पत्ति के संसाधन, अर्थात् श्रम की आपूर्ति का स्रोत है। श्रम की पर्याप्त आपूर्ति की अवस्था में अर्थव्यवस्था में उपलब्ध अन्य संसाधनों, विशेष रूप से प्राकृतिक संसाधनों, का समुचित प्रयोग संभव हो पाता है। श्रम के अभाव में उपलब्ध संसाधन बेकार पड़े रहते हैं और अर्थव्यवस्था की विकास-क्षमताएँ अप्रयुक्त रहती हैं।

इसी तरह, बड़े आकार की जनसंख्या वाले देश में बड़े आकार के उत्पादन से प्राप्त वस्तुओं और सेवाओं के उपभोग की अपार शक्ति होती है जोकि उपक्रमियों के निवेश करने की प्रेरणा प्रदान करती है। निवेश की प्रेरणा अर्थव्यवस्था के सर्वांगीण विकास के अवसर प्रदान करती है जिससे आय, उपभोग, बचत और पूँजी निर्माण के स्तर में सुधार आ पाता है।

उपरोक्त कारणों से यह सामान्य धारणा बनी रही है कि जनसंख्या की वृद्धि आर्थिक विकास के अनुकूल समझी जानी चाहिए।

किंतु भारत जैसे देशों में परिस्थिति बिल्कुल इसके विपरीत है। यहाँ जनसंख्या का आकार बढ़ा है और जनसंख्या आगे भी बढ़ रही है। किंतु ऐसे देशों में, विकास के लिए आवश्यक अन्य पूरक साधन जैसे विशेष रूप से पूँजीगत सामान पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं हैं। पूरक संसाधनों की अनुपब्धि की परिस्थिति में जन-शक्ति का एक बड़ा भाग बेरोज़गार बना रहता है। जन-शक्ति का यह भाग राष्ट्रीय उत्पाद के निर्माण में तो किसी तरह का योगदान नहीं करता, किंतु इनके जीवन-निर्वाह के लिए राष्ट्र को इनके उपभोग पर व्यय करना पड़ता है। इस प्रकार के व्यय को हम "जननाकिकीय निवेश" (Demographic investment) का नाम देते हैं। इस प्रकार के निवेश से राष्ट्रीय उत्पादन क्षमता का कोई विस्तार नहीं होता। कुल राष्ट्रीय निवेश में इस प्रकार के निवेश का जितना अधिक हिस्सा होगा राष्ट्र की आर्थिक विकास की दर उतनी ही धीमी पड़ती रहेगी।

भारतीय परिस्थितियों में बढ़ती जनसंख्या हमारे आगे बढ़ते कदमों की गति को बाँधे रखती है। अतः इस समस्या का यथाशीघ्र हमें कोई उपाय ढूँढ निकालना होगा।

## बोध प्रश्न 2

1) बढ़ती जनसंख्या तीव्र गति से आर्थिक विकास में किस प्रकार योगदान देती है? दो तरीके बताइए।

.....

.....

.....

.....

2) बढ़ती जनसंख्या आर्थिक विकास में क्या बाधाएँ प्रस्तुत करती हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

## 3.4 आधारिक ढाँचे की अपर्याप्त उपलब्धि

वे सभी मुद्दे और समस्याएँ जो कि भारतीय अर्थव्यवस्था को प्रभावित करते हैं और जिनके बारे में हम अब तक बातें करते हैं उन सबका शीघ्र ही निपटारा हो जाता है यदि हम देश में आर्थिक विकास की गति तेज़ कर पाते।

किंतु, आर्थिक विकास मंद गति से ही हो पाया है। मंद गति से आर्थिक विकास के लिए ज़िम्मेदार प्रमुख कारण है समुचित आधारीक ढाँचे की अपर्याप्त उपलब्धता। आधारीक ढाँचे से अभिप्राय उन समस्त सहयोगी सेवाओं से है जो कृषि, उद्योग आदि प्रत्यक्ष उत्पादन इकाइयों की उत्पादन क्रियाओं को निरंतरता प्रदान करने में सहायक होती हैं।

ढाँचे आधारीक को हम दो भागों में बाँट सकते हैं : (क) आर्थिक आधारीक ढाँचा; एवं (ख) सामाजिक आधारीक ढाँचा।

आर्थिक आधारीक ढाँचे में हम इन सेवाओं को जोड़ते हैं जैसे ऊर्जा, परिवहन एवं संचार की सेवाएँ, सिंचाई, औद्योगिक बस्तियाँ, तकनीकी पार्क आदि।

सामाजिक आधारीक ढाँचे में इसके विपरीत, उन सेवाओं को जोड़ा जाता है जो मानवीय संसाधनों के विकास में योगदान देती हैं जैसे शिक्षा, चिकित्सा की सुविधाएँ, सफाई, पीने के पानी की व्यवस्था, मल-निकासी आदि।

आधारीक ढाँचे की अपर्याप्तता विकास-क्रम में अनेक बाधाएँ प्रस्तुत करती हैं, जैसे यदि बंदरगाहों में पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध न हों तो माल के आवागमन में अनेक रुकावटें आएँगी, भीड़ बढ़ेगी और परिणामस्वरूप निर्यात के सामान ठीक समय से बाहर नहीं भेजे जा सकेंगे। इसी प्रकार, यदि देश में प्रशिक्षण और उच्च शिक्षा की पर्याप्त सुविधाएँ नहीं हैं तो व्यापारिक क्षेत्र एवं उद्योगों की प्रशिक्षित श्रमिकों की आवश्यकताएँ पूरी नहीं की जा सकेंगी और उनका विकास रुकेगा।

भारतीय अर्थव्यवस्था में आधारीक ढाँचे की उपलब्धि इसकी जरूरतों से कहीं कम रही है। जरूरतों और उपलब्धि में यह अंतर निरंतर बढ़ता रहा है। इस बात के अनेक प्रत्यक्ष प्रमाण सामने हैं जैसे सभी प्रकार की सेवाओं पर बढ़ते दबाव, सड़कों पर भारी भीड़, रेलों, पत्तनों एवं हवाई सेवाओं की अपर्याप्त आपूर्ति, ऊर्जा की कटौती, संचार की पुरानी व्यवस्था, विस्तृत अशिक्षा, निम्न-स्तरीय जीवन आदि।

भारतीय अर्थव्यवस्था में आधारीक ढाँचे की अपर्याप्त उपलब्धि के लिए ज़िम्मेदार प्रमुख कारण यह है कि हम अपनी योजनाओं में आधारीक ढाँचे की सेवाओं के विस्तार के लिए पर्याप्त वित्तीय संसाधनों की व्यवस्था नहीं कर पाए। दूसरी ओर, चूँकि अर्थव्यवस्था में सामान्य विकास-प्रक्रिया जारी है, परिणामतः आधारीक ढाँचे की आवश्यकताएँ क्रमशः बढ़ती जा रही हैं।

वर्तमान में जबकि आर्थिक परिवेश बदल चुका है और भारतीय अर्थव्यवस्था विश्वीय अर्थव्यवस्था के साथ तेज़ गति से जुड़ती जा रही है, यह आवश्यक है कि आधारीक ढाँचे की कमियों को यथाशीघ्र दूर किया जाए। यदि हम इस क्षेत्र में शीघ्र ही सफल नहीं हो पाते तो हम अंतरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा में बहुत ज्यादा पिछड़ जाएँगे और भारत दूसरे देशों की तुलना में बहुत पिछड़ा देश बनकर रह जाएगा। अतः आवश्यक है कि आधारीक ढाँचे के विकास के लिए पर्याप्त वित्तीय एवं अन्य संसाधनों की शीघ्र ही व्यवस्था की जाए। (विस्तृत अध्ययन के लिए खंड-3 की इकाई संख्या-11 देखिए)

### 3.5 बढ़ती कीमतों की समस्या

गरीबी-उन्मूलनों और आर्थिक विकास दोनों ही दृष्टियों से कीमतों के निरंतर बढ़ने की प्रवृत्ति चिंता का विषय है। कीमतों के लगातार बढ़ने की दीर्घकालिक प्रवृत्ति को मुद्रा-स्फीति का नाम दिया जाता है। भारत में पाँचवे दशक के मध्य में विकास कार्यक्रमों की कोख में से मुद्रा-स्फीति उदित हुई और उसके बाद से सामान्य कीमत-स्तर के निरंतर बढ़ने की प्रवृत्ति बनी रही है, हालाँकि कीमत-वृद्धि की दर में कम वृद्धि होती रही है।

एक विकासशील अर्थव्यवस्था के लिए मुद्रा-स्फीति बहुत बड़ी चिंता का विषय नहीं होना चाहिए। यह विशेष रूप में उस परिस्थितियों में सच होगा जबकि निवेशक-वर्ग और उपभोक्ता-वर्ग मुद्रा-स्फीति की दर का पूर्वानुमान लगाने के योग्य होते हैं एवं उसके अनुरूप अपने आचरण को ढाल लेते हैं। किंतु, वास्तव में होता क्या है कि समुचित संगठनों के अभाव में जिस प्रकार आर्थिक संस्थाएँ और प्रशासनिक प्रणालियाँ काम करती हैं बढ़ती कीमतों पर काबू पा लेना असंभव हो जाता है। जब कीमतें बेकाबू हो जाती हैं तो ये अस्थिरता को जन्म देती हैं। अस्थिरता के साथ ही जुड़ी है अनिश्चितता जोकि निवेशकर्ताओं को बाध्य करती है कि निवेश संबंधी निर्णय कुछ समय के लिए टाल दिए जाएँ। आर्थिक क्रियाएँ अपनी गति खो बैठती हैं, आर्थिक विकास रुक जाता है।

भारत के अनुभवों से यह स्पष्ट है कि मुद्रा-स्फीति पर लगाम लगाना एक दुष्कर कार्य है।

मुद्रा-स्फीति की समस्या से निपटने के लिए आवश्यक है कि अर्थव्यवस्था में उत्पादकता और उत्पादन की मात्रा में सुधार किया जाए। मुद्रा-स्फीति उत्पादों के माँग-आपूर्ति में पाए जाने वाले असंतुलन को परिलक्षित करती है। यदि इसी असंतुलन को दूर कर दिया जाए तो मुद्रा-स्फीति काबू में आ जाएगी। (विस्तृत अध्ययन के लिए अगली इकाई यानि कि इकाई-4 देखिए)

### 3.6 सरकार की भूमि एवं सार्वजनिक उद्यम

जैसा कि हम पहले भी अध्ययन कर आए हैं कि स्वतंत्र भारत को एक दुर्बल पिछड़ी हुई अर्थव्यवस्था धरोहर के रूप में मिली। स्वतंत्र भारत में हमारे प्रयास "सामाजिक न्याय के साथ आर्थिक विकास" पर केंद्रित रहे। प्रस्तावित लक्ष्य की प्राप्ति सरकार के सक्रिय योगदान के बिना संभव नहीं थी। अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में सरकार के सक्रिय योगदान की अपेक्षा की जा रही थी, भले ही यह उद्योग हों अथवा व्यापार। सरकार से यह अपेक्षा की जाती थी कि वह अर्थव्यवस्था में उपलब्ध संसाधनों के समुचित विकास की योजना बनाएगी एवं उस योजना को लागू करने के लिए पर्याप्त साधन जुटाएगी। सरकार से यह भी अपेक्षा की जाती थी कि निर्धारित क्षेत्रों में सरकारी स्वामित्व वाले कारखानों की स्थापना की जाएगी।

आर्थिक विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाओं को माध्यम बनाया गया। अर्थव्यवस्था की बागडोर सार्वजनिक क्षेत्र को सौंपने की व्यवस्था की गई। निजी पूँजी एवं उद्यम को पूर्व-निर्धारित दिशाओं में प्रवाहित करने के लिए नियंत्रणों एवं नियमनों की विस्तृत शैली तैयार की गई। अंदर की ओर उन्मुख व्यापार नीति अपनाई गई। हमारी व्यापार नीति का केंद्र-बिंदु आयात-प्रतिस्थापन रहा न कि निर्यात-संवर्द्धन। ऊँचे संरक्षणात्मक तटकरों द्वारा घरेलू उद्योगों को बढ़ने-फूलने के अवसर दिए गए। विदेशी पूँजी के अंतर्वाह (Inflow) पर रोक लगा दी गई। विदेशी पूँजी को या तो ऋणों के रूप में प्राप्त किया गया अथवा घरेलू उद्यमियों के साथ अल्पमत शेयरधारी के रूप में संयुक्त रूप से कार्य करने की अनुमति दी गई।

स्पष्ट रूप से आर्थिक विकास का बीड़ा सरकार ने अपने ऊपर उठाया। आर्थिक क्रियाओं से सम्बद्ध सभी निर्णय सरकार की ज़िम्मेदारी बनकर रह गए। सरकार का कार्य-क्षेत्र और ज़िम्मेदारी अर्थव्यवस्था में डबलरोटी और दूध के उत्पादन से लेकर बड़े-बड़े बिजली के संयंत्रों और अन्य सारी पूँजीगत सामान के उत्पादन एवं आपूर्ति तक फैल गए।

समस्याएँ उस समय उठ खड़ी हुईं जब सरकार अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप पर्याप्त मात्रा में संसाधन जुटाने में असमर्थ सिद्ध हुईं। घरेलू वित्तीय संसाधनों की आपूर्ति के लिए बड़ी मात्रा में घरेलू ऋणों की व्यवस्था की जरूरत आ पड़ी। इस प्रकार से प्राप्त पूँजी का उपयोग वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति में किया गया। इसी तरह, विदेशी ऋणों के बोझ में चालू खातों के भुगतान-शेष के घाटे गंभीर रूप धारण करते गए। घरेलू उत्पादन ढाँचा विदेशी प्रतिस्पर्धा के थपेड़ों को सहन करने में असमर्थ था चूँकि इसका तो सारा लालन-पालन ही एक असहाय शिशु के रूप में संरक्षण द्वारा हुआ था।

नवें दशक के आरंभ में यह महसूस किया गया कि सरकार की भूमिका पर पुनः गौर करना होगा। विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों से सरकार की वापसी का क्रम आरंभ हो गया। इसकी जगह निजी पूँजी एवं उद्यमी को आगे बढ़ने के लिए उत्साहित किया जाने लगा। यह प्रक्रिया अभी पूरी नहीं हुई है। किंतु सरकार के पीछे हटने के साथ ही कुछ नई समस्याएँ और मुद्दे हमारे सामने आ चुके हैं। इन मुद्दों में विचारणीय है कि आधारिक ढाँचे में निवेश कौन करेगा, सामाजिक क्षेत्रों का बीड़ा कौन उठाएगा, वे क्षेत्र जो कि निजी पूँजी की दृष्टि से कम प्राथमिकता वाले क्षेत्र हैं तथा इनकी अवज्ञा कर दी जाएगी, समाज के दुर्बल और दीन वर्ग के लिए आर्थिक सुरक्षा का प्रबंध कौन करेगा, क्या सामाजिक न्याय और आत्म-निर्भरता के उद्देश्यों को तिलांजलि दे दी जाएगी।

इन विभिन्न मुद्दों पर अभी विचार करना बाकी बचा है। भविष्य की नीति-निर्धारण की प्रक्रिया इन मुद्दों से प्रभावित होगी।



### 3.7 काली अर्थव्यवस्था एवं भ्रष्टाचार

व्यापक सरकारी नियंत्रण प्रणाली तथा सर्वत्र राज्य की प्रमुखता के दुष्परिणाम स्वरूप हमें भ्रष्टाचार एवं काली अर्थव्यवस्था जैसी काली घटनाओं को सहन करना पड़ा है। विश्व-भर में 54 देशों के एक सर्वेक्षण से पता चला है कि भारत उन पाँच देशों में है जहाँ भ्रष्टाचार घोर रूप में फैला हुआ है।

भ्रष्टाचार की उत्पत्ति अनेक कारणों से होती है जिनमें प्रमुख निम्नलिखित हैं :

- 1) आर्थिक संव्यवहारों में पारदर्शिता का अभाव,
- 2) वस्तुओं और सेवाओं की दुर्लभता और उनके वितरण पर नियंत्रण;
- 3) लालफीताशाही जो रिश्वत आदि को बढ़ावा देती है, एवं
- 4) पुराने कानूनों एवं की जटिलता एवं उनकी अव्यवहार्यता।

भ्रष्टाचार के दुष्परिणाम के रूप में उपलब्ध संसाधनों का कुशल उपयोग संभव नहीं हो पाता। आदर्श उपयोग के अभाव में आर्थिक विकास की गति धीमी पड़ जाती है।

भ्रष्टाचार काली अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देता है। काली अर्थव्यवस्था में उन आर्थिक संव्यवहारों को शामिल किया जाता है जिनका हिसाब किसी लेखा-जोखा में नहीं रखा जाता और इसकी जानकारी संबंधित सरकारी अधिकारियों को नहीं दी जाती। स्पष्ट रूप से ऐसा करों से बचने के लिए किया जाता है, अन्यथा ऐसे संव्यवहार अवैध होते हैं जिनकी कानून स्वीकृति प्रदान नहीं करता है।

पिछले दशकों में भारत में काली अर्थव्यवस्था के आकार में निरंतर विस्तार होता है और अब यह गंभीर चिंता का विषय बन चुकी है। काली अर्थव्यवस्था जितनी फैलती जाती है सरकारी नियमनों और कानूनों की प्रभावशीलता और कुशलता उसी अनुपात में कम होती जाती है। यह बात अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों के लिए समान होती है भले ही यह मौद्रिक पहलू हों या वित्तीय या फिर अन्य कोई।

काले बाज़ार के विस्तार के लिए अनेक कारण जिम्मेदार हैं। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं :

- i) करों की उच्च दरें एवं परोक्ष करों पर प्रत्यक्ष करों की तुलना में अधिक निर्भरता;
- ii) प्रजातांत्रिक प्रणाली के अनुरूप चुनावों की प्रणाली जिसमें राजनैतिक दलों को चुनाव लड़ने के लिए भारी राशि खर्च करनी होती है और स्पष्ट रूप से उस राशि की व्यवस्था करनी होती है; एवं
- iii) सामान्य नैतिकता के स्तर में आई आम गिरावट।

काली अर्थव्यवस्था से निपटने के लिए सरकार समय-समय पर प्रोत्साहनों एवं दण्डों की संयुक्त नीति का प्रयोग करती रही है। काले धन एवं काली आय वाले लोगों का समय-समय पर अवसर प्रदान किए गए हैं कि वे समानांतर अर्थव्यवस्था के रास्ते को छोड़कर नियमित मार्ग पर चलना शुरू कर दें। किंतु, इस तरह की नीति को कोई विशेष सफलता नहीं प्राप्त हुई है जो इस बात से स्पष्ट है कि काली अर्थव्यवस्था के विस्तार की प्रक्रिया बराबर जारी है।

### 3.8 निम्न उत्पादकता की समस्या

अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में निम्न दर्जे की उत्पादकता का पाया जाना धीमी गति से आर्थिक विकास का एक प्रमुख कारण है। विभिन्न क्षेत्रों में चाहे व कृषि हो या उद्योग या फिर सेवा क्षेत्र, उत्पादकता का स्तर इस कारण से निम्न दर्जे का है कि यहाँ उत्पादन की पिछड़ी हुई तकनीकों का प्रयोग किया जाता है तथा आधुनिक प्रौद्योगिकी का अभाव है।

कृषि क्षेत्र में, अपर्याप्त पूँजी निर्माण के कारण नई बेहतर तकनीकों का प्रयोग करना संभव नहीं हो गया है। भारतीय कृषक वर्ग प्रमुख रूप से कृषि को जीवन-निर्वाह का ही साधन समझते आए हैं ताकि वे अपनी दो जून की आवश्यकताएँ पूरी कर सकें। उनके पास किसी तरह की बचत की गई सम्पत्ति या पूँजी नहीं होती।

इसके विपरीत, बड़े-बड़े किसान खेती-बाड़ी से बड़ी मात्रा में आय कमाते हैं। लेकिन यह वर्ग भी अर्जित आय का प्रयोग खेती-बाड़ी में सुधार के लिए न करके गैर-कृषि कार्यों में अपनी बचत खर्च कर देते हैं। आधुनिक तकनीकी जानकारी एवं उपकरणों के प्रयोग से वंचित कृषि-क्षेत्र में उत्पादकता निम्न दर्जे की बनी रहती है।

इसी तरह, औद्योगिक क्षेत्र में आधुनिक पूँजीगत सामान और तकनीकों के प्रयोग के अभाव के कारण उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। आधुनिक तकनीक पूँजी-गहन तकनीक है। इन तकनीकों का प्रयोग प्रमुख रूप से उन उद्योगों में किया जाता है जिन्हें पैमाने की मितव्ययिताएँ प्राप्त होती हैं। तकनीक के पूँजी-गहन स्वरूप का यह भी तात्पर्य है कि बड़े पैमाने पर उत्पादन करने के लिए उत्पादन-संगठन को पर्याप्त मात्रा में वित्तीय संसाधनों की आपूर्ति की भी समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। ये सुविधाएँ प्रायः हमारे उद्योगों को उपलब्ध नहीं होतीं। इसी तरह, बड़े पैमाने की मितव्ययिताएँ उसी परिस्थिति में प्राप्त की जा सकती हैं जबकि बाज़ार का विस्तृत आकार उपलब्ध हो। लेकिन, घरेलू बाज़ार की सीमितता तथा विदेशी बाज़ारों में अपना बेचने की अक्षमता के कारण बाज़ार का आकार सीमित ही बना रहता है।

पुनः, सामाजिक और आर्थिक आधारिक ढाँचे के अभाव में उत्पादकता का स्तर नीचे दर्जे का बना रहता है।

उत्पादकता के निम्न स्तर की परिस्थिति में उत्पादन लागत अपेक्षाकृत ऊँची होती है। ऊँची लागतों के कारण प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। पिछड़ा हुआ उत्पादक प्रतिस्पर्धा के दबाव में और पिछड़ा जाता है और उसकी उत्पादकता का हास होता रहता है।

विभिन्न विकास कार्यक्रमों की सफलता बहुत कुछ उत्पादकता के स्तर में सुधारों पर निर्भर करती है। उत्पादकता के स्तर में सुधार से ही आर्थिक विकास की गति तेज़ करना संभव हो पाएगा। उत्पादकता-सुधार से संसाधनों की उपलब्धि बढ़ेगी जिसके परिणामस्वरूप उन सभी समस्याओं का अपने-आप ही समाधान निकल आएगा जो कि संसाधनों की सीमित उपलब्धता के कारण उत्पन्न होती है।

### 3.9 भुगतान-शेष की समस्या

भुगतान-शेष (BOP), वार्षिक विवरणिका है जिसमें एक देश के शेष-विश्व के साथ होने वाले आर्थिक संव्यवहारों का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया जाता है। इन संव्यवहारों को गुप्त के रूप में मापा जाता है। एक देश द्वारा टेकनालॉजी समेत विविध वस्तुओं एवं सेवाओं का निर्यात किया जा सकता है जिसके बदले में इसे विदेशों से सामान्य रूप से स्वीकार्य विदेशी मुद्रा (जिसे सुदृढ़ विदेशी मुद्रा का नाम दिया जाता है) प्राप्त होती है। इसी तरह, इस देश द्वारा आयात की गई समस्त वस्तुओं एवं सेवाओं के भुगतान विदेशी मुद्रा में किए जाते हैं। स्पष्टतः देश की बढ़ती हुई आयात आवश्यकताओं की आपूर्ति के लिए यह आवश्यक है कि निर्यातों की मात्रा बढ़ाई जाए जिससे कि आवश्यक विदेशी मुद्रा अर्जित की जा सके।

दूसरे शब्दों में, निर्यात के बदले प्राप्त विदेशी मुद्रा के अन्तर्वाह आयात के बदले भुगतान किए गए विदेशी मुद्रा के बहिर्वाह के बराबर होने चाहिए। यदि अन्तर्वाह की राशि बहिर्वाह से कम होती है तो देश के भुगतान-संतुलन में घाटे की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस घाटे का वित्तीयन उपलब्ध विदेशी मुद्रा रिज़र्वों से किया जा सकता है। अन्यथा इसका वित्तीयन विदेशों से ऋण लेकर या विदेशियों द्वारा घरेलू बाज़ार में निवेश को प्रेरित कर किया जा सकता है। इस तरह भुगतान-शेष के घाटे अल्पकाल में विकास प्रक्रिया पर किसी तरह की रोक नहीं लगाते हालाँकि दीर्घकाल में ऋण-सेवा और निवेश आय के वापिस जाने से उत्पन्न बोध असहनीय हो सकता है।

ऐसी परिस्थिति में जबकि भुगतान शेष के घाटों का वित्तीयन नहीं किया जा सकता है। यह अनिवार्य होगा कि आयात की मात्रा में कटौती की जाए। आयातों में कमी से देश में विकास-प्रक्रिया धीमी पड़ जाती है।

भारत की भुगतान-शेष की स्थिति को उपरोक्त संदर्भ में ही देखा जाना चाहिए। प्रथम पंचवर्षीय योजना के साथ आयोजनबद्ध विकास कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ।

इस दौरान घरेलू आवश्यकताओं की आपूर्ति के लिए भारी मात्रा में उपभोक्ता एवं पूँजीगत वस्तुओं तथा मध्यवर्ती वस्तुओं के आयात की आवश्यकता बन पड़ी। भारत जैसी विकासशील अर्थव्यवस्था से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती थी कि समस्त आयातों का भुगतान निर्यातों के बदले प्राप्त विदेशी मुद्रा द्वारा करना सम्भव

हो पाएगा। परिणामतः बड़ी मात्रा में विदेशी पूँजी निवेश को हतोत्साहित किया गया। बढ़ते विदेशी ऋणों के बोझ में भुगतान-शेष के घाटे बढ़ते गए। हम इसी आशा से नए और नए ऋण लेते गए कि हम जल्दी ही निर्यात-योग्य अतिरेक का निर्माण कर आवश्यक विदेशी मुद्रा कमाने में समर्थ हो जाएँगे।

लेकिन ऐसा नहीं हुआ। हमारे निर्यातों में कोई उल्लेखनीय वृद्धि सम्भव नहीं हो पाई। हमारा ऋण-बोझ निरन्तर बढ़ता गया। ऋण-सेवा के रूप में हमारे विदेशी मुद्रा के खर्चे बढ़ते गए। आवश्यक आयातों के लिए उपयुक्त मात्रा में विदेशी मुद्रा का प्रबन्ध करने में हम असमर्थ रहे। विकास-प्रक्रिया में विदेशी मुद्रा की कमी सबसे बड़ा गतिरोध बनकर खड़ा हो गई।

नवें दशक के आरम्भ में हमने आर्थिक विकास के मार्ग में भुगतान-शेष के घाटे रूपी प्रतिरोध को दूर करने के लिए नई युक्ति अपनाई। इस युक्ति के अनुसार आर्थिक विकास के हमारे प्रयासों में निर्यात सम्बन्धन को उच्चतम प्राथमिकता प्रदान की गई। साथ ही विदेशी पूँजी के प्रति हमारे व्यवहार में भी परिवर्तन आया। विदेशी पूँजी का हम खुले दिल से स्वागत करने लगे और इस वास्ते अनेक तरह के प्रोत्साहन भी किए। परिणामतः बदलते आर्थिक परिवेश में विदेशी पूँजी के अन्तर्वाह बढ़ने लगे। साथ ही निर्यातों की मात्रा में भी वृद्धि होने लगी। कुल मिलाकर, भुगतान-शेष के घाटे जो कुछ समय पहले तक एक बहुत गम्भीर गतिरोध बने हुए थे धीरे-धीरे अपना प्रभाव खोते जा रहे हैं।

किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि हमने भुगतान-शेष सम्बन्धी समस्या का अन्ततः निवारण कर लिया है। भुगतान-शेष की समस्या के स्थायी निवारण के वास्ते हमें निर्यातों की इतनी मात्रा करनी होगी जिससे कि हम वाहन क्षेत्र के समस्त दायित्वों की आपूर्ति कर सकें।

जैसा कि हम पहले वर्णन कर आए हैं कि संसाधनों की स्वल्पता से निपटने के लिए हमें आधुनिकतम तकनीकों को अपनाकर उत्पादकता के स्तर में पर्याप्त सुधार लाने होंगे। किन्तु अर्थव्यवस्था में आधुनिकीकरण एवं उत्पादकता-सुधार के सभी कार्यक्रमों को विदेशी मुद्रा के अभाव की स्थिति का सामना करना पड़ता है।

एक विकासशील अर्थव्यवस्था की आयात की आवश्यकताएँ बहु-आयामीय होती हैं। किन्तु विदेशी मुद्रा अर्जित करने की इसकी क्षमता सीमित होती है। परिणामस्वरूप विकासशील देशों की चालू खातों पर घाटों से निपटना होता है। चालू खाते के घाटों का वित्त-पोषण शेष-विश्व से पूँजी-अंतर्वाह (capital inflows) द्वारा किया जाता है। पूँजी के ये अंतर्वाह यदि ऋणों के रूप में हैं तो इन ऋणों पर ब्याज देना पड़ता है अर्थात् ऋणों की सेवा करनी पड़ती है। ऋण सेवा का बोझ निरन्तर बढ़ता जाता है और भुगतान-शेष के घाटे आर्थिक विकास के मार्ग में भारी रुकावट बनकर सामने आते हैं।

भारत भी इस प्रवृत्ति का अपवाद नहीं रहा है। अर्थात् भारत को अपने विकास-क्रम में भुगतान-शेष के घाटों से उत्पन्न रुकावटों का सामना करना पड़ रहा है। भुगतान-शेष के घाटों के वित्तीयन के लिए भारत भारी मात्रा में विदेशी ऋण लेता रहा है। परिणामस्वरूप, विदेशी ऋणों को लौटाने और ऋण-सेवा की आपूर्ति के लिए भारत कठोर शर्तों पर नए ऋण लेने के लिए मजबूर हो गया था। ऐसी परिस्थिति में उपलब्ध विदेशी-मुद्रा को सोच-समझकर नियोजित तरीके से ही खर्च किया जा सकता है।

### 3.10 राजकोषीय बाधाएँ

विकास के लिए आवश्यक सरकार के पास घरेलू वित्तीय संसाधनों की अनुपलब्धि भी तीव्र गति से आर्थिक विकास के रास्ते में भारी बाधा सिद्ध हो रही है। घरेलू वित्तीय संसाधनों की पर्याप्त अनुपलब्धि का प्रमुख कारण यह है कि पिछले तीन दशकों में लगातार सरकार अपने पैर अपनी चादर से बाहर फैलाती रही है। अर्थात् पिछले तीन दशकों के दौरान प्रत्येक वर्ष सरकार के चालू खाते के खर्चें सरकार की चालू वार्षिक आय से अधिक ही रहे हैं। सरकार के चालू खाते के खर्चों में हम जिन मदों को शामिल करते हैं उनमें प्रमुख हैं—प्रतिरक्षा, लोक-प्रकाशन, सामाजिक एवं आर्थिक सेवाएँ, ब्याज के भुगतान एवं अनुदान। इनमें से किसी भी मद पर सरकारी खर्च में कटौती करना संभव नहीं हो पाया है और यदि सरकार बिना सोचे-समझे इन खर्चों में कमी कर दे तो अनेक तरह की विकृतियों को बढ़ावा मिलने की आशंका से इंकार नहीं किया जा सकता। दूसरी ओर, अतिरिक्त साधन जुटाने की ओर पिछले दशकों के दौरान सरकार ने कोई विशेष प्रयत्न नहीं किए हैं। बल्कि, सरकार लोक ऋण और घाटे की वित्त व्यवस्था जैसी सरल बैसाखियों का सहारा लेती रही है। ऐसा करने से सरकार की तात्कालिक मुश्किलें तो दूर हो जाती हैं, किन्तु इनसे दीर्घकालिक संभावनाओं की

अवहेलना होती है। परिणाम यह है कि अतीत में इस तरह से किए गए वित्तीयन वर्तमान में विकास मार्ग में अनेक बाधाएँ प्रस्तुत कर रहे हैं। स्फीतिकारी प्रवृत्तियों और ऋण-सेवाओं के बढ़ते बोझ ने सरकार के हाथ इस कदर बाँध रखे हैं कि सरकार न तो पूँजी-निर्माण के लिए पर्याप्त संसाधनों की व्यवस्था कर पा रही है और न ही सामाजिक कल्याण के कार्यों के लिए पर्याप्त धन की आपूर्ति संभव है। उल्लेखनीय है कि यदि इन कार्यों के लिए पर्याप्त वित्तीय संसाधन उपलब्ध नहीं हो पाते तो चल रहे आर्थिक सुधार कार्यक्रम को अनेक बड़ी बाधाओं का सामना करना होगा।

### बोध प्रश्न 3

1) आर्थिक आधारिक ढाँचे से आप क्या समझते हैं?

.....  
.....  
.....  
.....

2) सामाजिक आधारिक ढाँचे के प्रमुख घटक बताइए।

.....  
.....  
.....  
.....

3) आधारिक ढाँचे की अपर्याप्त उपलब्धि किस प्रकार आर्थिक विकास के मार्ग में बाधक सिद्ध होती है?

.....  
.....  
.....  
.....

4) मुद्रा-स्फीति की समस्या के समाधान के लिए आप क्या सुझाव देंगे?

.....  
.....  
.....  
.....

5) भारत में भुगतान-शेष में घाटे की समस्या के कारण बताइए।

.....  
.....  
.....  
.....  
.....

### 3.11 विकास में क्षेत्रीय विषमताएँ

क्षेत्रीय असंतुलन से अभिप्राय होता है किसी देश के अंतर्गत विभिन्न क्षेत्रों का असमान या असमानुपातिक विकास। भारत में क्षेत्रीय असंतुलन का अनुमान लगाने के लिए अनेक संकेतों का प्रयोग किया जा सकता है। सारणी-3 में क्षेत्रीय असंतुलन के कुछ सामाजिक-आर्थिक कारकों को दिया गया है। राज्यों को प्रति व्यक्ति आय के अनुसार अवरोही क्रम में रखा गया है।

सारणी-3

भारत के विभिन्न राज्यों के चुने हुए सामाजिक-आर्थिक संकेतक

भारत के प्रदेश	1980-81 कीमतों पर प्रतिव्यक्ति आय (1991-92)	कुल जनसंख्या में गरीबी की रेखा से नीचे की जनसंख्या का प्रतिशत	कुल जनसंख्या में शहरी जनसंख्या का प्रतिशत (1991)	प्रति लाख जनसंख्या फ़ैक्टरी श्रमिकों का औसत दैनिक नियोजन (1995)	निवल फसल बोए गए क्षेत्र में निवल सींचित क्षेत्र का प्रतिशत (1990-1991)	प्रति व्यक्ति किलोवाट बिजली की खपत (1992-1913)
1. गोआ	4800	23.5	41	NA	15	663
2. पंजाब	3869	12.7	30	1400	93	863
3. हरियाणा	3455	16.6	25	1630	73	673
4. महाराष्ट्र	3381	40.1	39	1750	11	524
5. अरुणाचल प्रदेश	3012	37.5	12	NA	21	128
6. गुजरात	2412	32.3	34	1890	27	622
7. तमिलनाडु	2322	45.1	34	1400	43	431
8. कर्नाटक	2255	38.1	31	1340	20	357
9. हिमाचल प्रदेश	2074	15.5	9	NA	17	296
10. पश्चिम बंगाल	2015	44.5	27	1510	36	165
11. मनीपुर	-	-	-	-	-	-
12. मेघालय	2002	32.9	28	NA	46	140
13. नागालैण्ड	1900	34.9	17	NA	31	100
14. असम	1887	36.8	11	400	21	91
15. केरल	1826	32.1	26	1080	15	255
16. आंध्र प्रदेश	1788	27.2	27	910	39	365
17. राजस्थान	1733	34.6	24	520	24	320
18. त्रिपुरा	1689	36.8	15	NA	15	84
19. जम्मू और कश्मीर	1687	23.2	24	NA	41	380
20. मध्य प्रदेश	1621	43.4	23	750	22	312
21. उत्तर प्रदेश	1589	42.0	20	470	61	209
22. उड़ीसा	1512	55.6	13	400	31	226
23. बिहार	1091	53.4	13	600	44	61
24. मिजोरम	NA	32.5	46	NA	12	126
25. सिक्किम	3369*	34.7	9	NA	17	--
अखिल भारतीय	2229	39.3	26	1050	33	330

स्रोत : सी एम आई ई, सटैटिस्टिक्स रिलेटिंग टू दि इंडियन इकॉनामी, वोल्यूम II (1994), ड्राफ्ट मिड-टर्म एग्जल ऑफ दि एर्थ फाइन ड्यूर प्लान (1992-97), रिपोर्ट ऑफ दि एक्सपर्ट ग्रुप ऑन-एस्टिमेशन ऑफ प्रोपोर्शन एंड नम्बर ऑफ दि प्पुअर (1993)

## राज्यों में प्रतिव्यक्ति आय में अंतर

इन आँकड़ों से पता चलता है कि 1980-81 कीमतों पर 1991-92 में भारत में प्रतिव्यक्ति आय 2,229 रु. थी, लेकिन आठ राज्यों, गोआ, पंजाब, हरियाणा, महाराष्ट्र, गुजरात, अरुणाचल प्रदेश, तमिलनाडु और कर्नाटक की प्रतिव्यक्ति आय अखिल भारतीय औसत से अधिक थी। दूसरे छोर पर बिहार था, जिसकी प्रतिव्यक्ति आय केवल 1,091 रु. थी। उसके बाद उड़ीसा (1,512 रु.) और उत्तर प्रदेश (1,589 रु.) थे। यदि हम गोआ की विशेष श्रेणी के एक छोटे राज्य में रूप में ले लें तो भी पंजाब की प्रतिव्यक्ति आय (3,869 रु.) बिहार के प्रति व्यक्ति आय की 3.5 गुनी थी। इस संबंध में ध्यान देने की बात यह है कि 1980-81 में पंजाब की प्रतिव्यक्ति आय 2,474 रु. थी और बिहार की 917 रु. थी। इसका अर्थ यह है कि 1980-81 में अधिकतम न्यूनतम अनुपात 2.9 था। इससे यह स्पष्ट है कि पंजाब में प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि दर बिहार में बहुत अधिक थी। इसी के फलस्वरूप क्षेत्रीय असमानता बहुत अधिक बढ़ गई है।

## विभिन्न राज्यों में गरीबी का अनुपात

वर्ष 1987-88 के लिए गरीबी की रेखा के नीचे की जनसंख्या के प्रतिशत संबंधी आँकड़ों से पता चलता है कि समस्त देश के लिए यह 39.3 प्रतिशत थी, लेकिन महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल उड़ीसा, बिहार, मध्य-प्रदेश और उत्तर-प्रदेश ऐसे राज्य हैं जिनमें गरीबी की रेखा से नीचे की जनसंख्या का अनुपात अखिल भारतीय औसत से अधिक है। बिहार में जनसंख्या का 53.4 प्रतिशत और उड़ीसा में 55.6 प्रतिशत लोग गरीब हैं। 1987-88 में कुल गरीब लोगों की संख्या 31.28 करोड़ थी, जिनमें 71 प्रतिशत (22.25 करोड़) सात राज्यों— महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, पश्चिम बंगाल, तमिलनाडु, बिहार और उड़ीसा में रहते थे (सारणी-4 देखिए)।

सारणी-4 में दिए गए आँकड़ों से पता चलता है कि 1973-74 और 1987-88 के बीच गरीबी की रेखा से नीचे की जनसंख्या का अनुपात 54.9 प्रतिशत घट गया। इस प्रकार गरीबी के अनुपात में प्रतिवर्ष 1.1 प्रतिशत की कमी हुई। लेकिन इन आँकड़ों को गौर से देखने पर हम पाते हैं कि गिरावट की अधिकतम दर 2.0 प्रतिशत केरल में थी तथा न्यूनतम दर 0.6 प्रतिशत बिहार में थी।

इस संबंध में सुखद बात यह है कि पंजाब में गरीबी का अनुपात गिरकर 12.7 प्रतिशत हो गया, लेकिन दुःख की बात यह है कि आज़ादी के 40 वर्षों बाद भी उड़ीसा और बिहार में यह अनुपात क्रमशः 55-6 प्रतिशत और 53.4 प्रतिशत था।

## आधुनिकीकरण के संकेतक

किसी देश या क्षेत्र के आधुनिकीकरण के संबंध में तीन प्रमुख संकेतक हैं : शहरी जनसंख्या का अनुपात, प्रति लाख जनसंख्या पर फैक्टरी श्रमिकों का औसत प्रतिदिन नियोजन और बिजली की प्रतिव्यक्ति खपत। इन आँकड़ों का ध्यान से विश्लेषण करने पर पता चलता है कि 191 में शहरीकरण की मात्रा कुल जनसंख्या की 26 प्रतिशत थी, परंतु राज्य के स्तर पर इसमें बहुत विभिन्नताएँ थीं। एक ओर हिमाचल प्रदेश, आंध्र-प्रदेश, असम, त्रिपुरा, उड़ीसा, सिक्किम और बिहार में कुल जनसंख्या में शहरी जनसंख्या 15 प्रतिशत से कम थी, दूसरी ओर जिन राज्यों में कुल जनसंख्या का 30 प्रतिशत से अधिक शहरों में था वे थे पंजाब, महाराष्ट्र, गुजरात, तमिलनाडु, कर्नाटक और मिजोरम। (सारणी-3 देखिए)

## बिजली का प्रतिव्यक्ति उपभोग

उद्योगीकरण का एक प्रमुख संकेतक है बिजली का प्रतिव्यक्ति उपभोग। इसके संबंध में राज्यों के बीच बहुत अधिक अंतर है। बिहार में प्रतिव्यक्ति बिजली का उपभोग 61 किलोवाट है जबकि पंजाब में यह 863 किलोवाट है। इसका अर्थ है बिहार और पंजाब के बीच 1:14 का अनुपात। राष्ट्रीय औसत 330 किलोवाट था, परंतु पश्चिम बंगाल में यह केवल 165 किलोवाट था, जो राष्ट्रीय औसत का केवल आधा ही था। अन्य जिन राज्यों में बिजली की खपत की स्थिति बहुत खराब थी वे हैं अरुणाचल प्रदेश, मनीपुर, नागालैण्ड, असम त्रिपुरा और मिजोरम। देश के उत्तर पूर्वी क्षेत्रों में बिजली की बहुत कम उपभोग उसके पिछड़ेपन का संकेतक हैं। (सारणी-3 देखिए)

## फैक्टरी श्रमिकों का औसत प्रतिदिन नियोजन

उसी प्रकार प्रतिलाख जनसंख्या पर फैक्टरी श्रमिकों के प्रतिदिन औसत नियोजन को उस राज्य के उद्योगीकरण का सूचक कहा जा सकता है। इस दृष्टि से अखिल भारतीय स्तर 1050 है। इसके विपरीत जो राज्य

फैक्टरियों में अधिक रोज़गार पैदा कर सकते हैं वे हैं गुजरात, हरियाणा, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, कर्नाटक, पश्चिम बंगाल और केरल। इस कसौटी के आधार पर सबसे अधिक पिछड़े राज्य हैं- उड़ीसा, असम, राजस्थान और उत्तर प्रदेश। उनके बाद बिहार, मध्य प्रदेश और आंध्र प्रदेश का स्थान आता है। (सारणी-3 देखिए)

सारणी-4

गरीबों की संख्या और उनका प्रतिशत : 1987-88 गरीबी अनुपात के आधार पर आरोही क्रम में

	लाखों में गरीबों की संख्या		गरीबी अनुपात (जनसंख्या का प्रतिशत)		गरीबी में कमी का प्रतिशत	
	1973-74	1987-88	1973-74	1987-88	14 वर्ष	रकम
1. पंजाब	40.4	24.6	28.08	12.70	15.38	1.1
2. हिमाचल प्रदेश	9.7	7.6	26.40	15.46	10.94	0.8
3. हरियाणा	38.2	25.9	35.24	16.63	18.60	1.3
4. जम्मू और कश्मीर	21.4	16.4	42.59	23.20	19.39	1.4
5. गोआ	4.1	2.7	44.04	23.42	20.62	1.5
6. आंध्र प्रदेश	227.5	167.8	49.25	27.20	22.05	1.6
7. केरल	135.3	92.2	59.71	32.08	27.63	2.0
8. गुजरात	135.7	128.6	47.21	32.33	14.88	1.1
9. मिज़ोरम	1.8	2.0	50.33	32.52	17.81	1.3
10. मनीपुर	5.9	5.5	50.01	32.93	17.08	1.2
11. मेघालय	5.5	5.5	50.25	34.60	15.65	1.1
12. राजस्थान	129.0	141.2	46.33	34.60	11.73	0.8
13. सिक्किम	1.2	1.4	50.91	34.67	16.24	1.2
14. नागालैंड	2.9	3.4	50.87	34.85	16.02	1.1
15. त्रिपुरा	8.5	9.0	51.03	36.84	14.19	1.0
16. असम	81.9	85.4	51.23	36.84	14.39	1.0
17. अरुणाचल प्रदेश	2.7	2.8	51.96	37.47	14.49	1.0
18. कर्नाटक	170.3	162.4	54.34	38.14	16.20	1.2
19. महाराष्ट्र	285.8	294.2	52.94	40.10	12.84	0.9
20. उत्तर प्रदेश	538.9	537.0	56.98	41.99	14.99	1.1
21. मध्य प्रदेश	276.8	265.9	61.90	43.40	18.50	1.3
22. पश्चिम बंगाल	299.1	276.7	53.39	43.99	19.40	1.4
23. तमिलनाडु	246.4	243.2	56.51	45.13	11.38	0.8
24. बिहार	369.8	439.8	61.78	55.37	8.41	0.6
25. उड़ीसा	154.6	168.0	66.24	55.61	10.63	0.7
अखिल भारतीय	3216.0	3127.5	54.93	39.34	15.59	1.1

स्रोत : योजना आयोग, रिपोर्ट ऑन एक्सपर्ट ग्रुप आन एस्टिमेशन ऑफ प्रोपोशन एंड नम्बर ऑफ पूवर (1993) से संकलित और परिकलित।

## 3.12 पर्यावरण ह्रास की समस्या

आर्थिक विकास के कारण उत्पन्न एक और समस्या जिसकी ओर विचारकों एवं नियोजकों का ध्यान जाना स्वाभाविक है, यह पर्यावरण से संबंधित है। आर्थिक विकास की क्रिया जैसे-जैसे गति पकड़ती जाती है प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग और शोषण भी बढ़ता जाता है। ऐसा इसलिए होता है कि एक ओर बढ़ती हुई जनसंख्या की आवश्यकताओं की आपूर्ति का प्रावधान करने की आवश्यकता होती है और दूसरी ओर जीवन-स्तर में सुधार के लिए जब प्रयास किए जाते हैं तो अधिक मात्रा में संसाधनों का प्रयोग किया जाता है।

यदि उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों का सुनियोजित तरीके से समुचित उपयोग न किया जाए, बल्कि इनके प्रयोग में मनमानी बरती जाए तो थोड़े ही समय में अर्थव्यवस्था के समक्ष पर्यावरण-असंतुलन (Ecological imbalance) की समस्या सिर उठा लेती है। परिणामस्वरूप, उपलब्ध संसाधनों का कुशल प्रयोग संभव नहीं हो पाता और अनेक तरह की बाह्य प्रभाव अथवा बाह्यताएँ (externalities) उत्पन्न हो जाती हैं। जैसे वायु, जल, ध्वनि के प्रदूषण की समस्या। इन बाह्यताओं की लागत का बोझ समस्त समाज को उठाना पड़ता है।

अन्य सभी देशों की तरह भारत में भी पर्यावरण के ह्रास की समस्या धीरे-धीरे गंभीर रूप धारण करती जा रही है। नीति-निर्धारकों, अर्थशास्त्रियों, समाजशास्त्रियों, राजनेताओं एवं वैज्ञानिकों में यह सहमति है कि उन सबको मिलकर इस समस्या पर विचार करना होगा और समुचित हल खोज निकालना होगा। अन्यथा भावी पीढ़ियाँ हमें हमारी बहुत महँगी सिद्ध होने वाली भूल के लिए कभी क्षमा नहीं करेंगी। (विस्तृत अध्ययन के लिए खंड-3 की इकाई-2 देखिए)

### बोध प्रश्न 4

- 1) भारत में क्षेत्रीय असंतुलन के पाँच संकेतकों की सूची बनाइए। अर्थव्यवस्था के उद्योगीकरण के साथ इनमें से किनका प्रत्यक्ष संबंध होता है?

.....

.....

.....

## 3.13 सारांश

गरीबी चिरकाल से चली आ रही हमारी समस्या है। योजनावधि में विकास कार्यक्रमों के आयोजन के परिणामस्वरूप गरीबी के आकार में कुछ कमी तो हो पाई है लेकिन इस समस्या से पूरी तरह से निपटना संभव नहीं हो पाया है। वस्तुतः गरीबी धीमी गति से आर्थिक विकास, रोजगार के अपर्याप्त अवसरों तथा आय की बढ़ती विषमताओं का परिणाम है। विकास-प्रक्रिया में हमारे सामने कुछ अन्य समस्याएँ और मुद्दे भी उठाए हैं जैसे कि बढ़ती हुई कीमतेँ, निम्न उत्पादकता, भुगतान-शेष की समस्याएँ, राजकोपीय समस्याएँ आधारिक ढाँचे की अपर्याप्त उपलब्धि इत्यादि। इनके बारे में विचार करने की आवश्यकता है जिससे कि इन समस्याओं और मुद्दों से सरलता से निपटा जा सके।

## 3.14 शब्दावली

गरीबी-रेखा	: आय का वह स्तर जिससे कोई व्यक्ति अपने मात्र निर्वाह के लिए आवश्यक वस्तुएँ खरीद सकता है।
अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन	: अर्थव्यवस्था में विभिन्न उत्पादक क्षेत्रों के सापेक्ष महत्त्व में परिवर्तन।
सीमांत जोत	: खेती की वह इकाई जिसका आकार 1 हेक्टेयर से कम है।
छोटी जोत	: 1 हेक्टेयर से 2.5 हेक्टेयर वाली खेती की जोत।



नीचे की ओर बहाव

: वह क्रिया जिसके द्वार उच्च आय वर्ग से सृजित आय गरीब-वर्ग की ओर प्रवाहित होती है।

जनांकिकीय निवेश

: सकल निवेश का वह भाग जोकि बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकताओं की आपूर्ति के लिए किया जाता है।

आधारिक ढाँचा

: वे सभी सहयोगी सेवाएँ जोकि कृषि, उद्योग आदि उत्पादन क्रियाओं में योगदान देती है।

मुद्रा-स्फीति

: सामान्य कीमत स्तर में बढ़ने की दीर्घकालिक प्रवृत्ति।

भुगतान-शेष

: एक देश के शेष-विश्व के साथ एक निश्चित आर्थिक संव्यवहारों के मौद्रिक मूल्य का लेखा-जोखा।

---

### 3.15 कुछ उपयोगी पुस्तकें

---

Government of India (1992): *Eighth Five year Plan 1992-97*, Planning Commission, New Delhi.

Government of India (2000): *Economic Survey* (annual), Department of Economic Affairs, Ministry of Finance, New Delhi.

Dhingra, I.C. (2000): *Indian Economic Environment*, Sultan Chand & Sons, New Delhi.

Jalan Bimal (1996): *Indian Economic Policy*, Viking, New Delhi.

Joshi Vijay & IMD Little (1996): *Indian Economic Reforms, 1991-2001*, Oxford University Press, New Delhi.

---

### 3.16 बोध प्रश्नों के उत्तर

---

**बोध प्रश्न 1**

- 1) उप-भाग 3.2.1 देखिए।
- 2) उप-भाग 3.2.3 देखिए।
- 3) उप-भाग 3.2.4 देखिए।

**बोध प्रश्न 2**

- 1) भाग 3.3 देखिए।
- 2) भाग 3.3 देखिए।

**बोध प्रश्न 3**

- 1) भाग 3.4 देखिए।
- 2) भाग 3.4 देखिए।
- 3) भाग 3.4 देखिए।
- 4) भाग 3.5 देखिए। अंतिम पैरा देखिए।
- 5) भाग 3.9 देखिए।

**बोध प्रश्न 4**

- 1) भाग 3.11 देखिए।